**दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली**

निर्णय की तिथि: 07.11.2013

**आ.प्र.अ. (मू.प.) 485-86/2011**

**दिल्ली विकास प्राधिकरण** .....अपीलार्थी

बनाम

**मैसर्स दुर्गा कंस्ट्रक्शन कं.** .....प्रत्यर्थी

**<u>इस मामले में पेश हुए अधिवक्तागण:</u>**

अपीलार्थी के लिए : अरुण बीरबल

प्रत्यर्थी के लिए : श्री सम्राट निगम, श्री अमित पुंज और श्री जे. महाजन

**कोरम:-**

**माननीय न्यायमूर्ति श्री बदर दुर्रेज़ अहमद**

**माननीय न्यायमूर्ति श्री विभु बाखरू**

**<u>निर्णय</u>**

**<u>न्या. विभु बाखरू</u>**

1. अपीलार्थी ने इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा मू.वि.या. सं. 89/2009 में पारित दिनांक 06.04.2011 के आदेश (इसके पश्चात् 'आक्षेपित आदेश' के रूप में संदर्भित) को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील प्रस्तुत की है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश में अपीलार्थी द्वारा सि.प्र.सं. की धारा

151 के अंतर्गत दायर अं.आ. सं. 1711/2010 के आवेदन को खारिज कर दिया है, जिसमें माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 (इसके पश्चात् 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत आपत्तियों को फिर से दाखिल करने में 166 दिनों के विलंब को माफ़ करने की माँग की गई थी।

2. वर्तमान मामले में विवाद यह है कि क्या अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आपत्ति को पुनः दाखिल करने में 166 दिनों की देरी को अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्धारित तीन महीने और तीस दिनों की कानूनी सीमा अवधि से परे माफ़ किया जा सकता है।

3. वर्तमान अपील में विवाद के परीक्षण के लिए प्रासंगिक तथ्य संक्षेप में निम्नानुसार हैं।

4. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच कुछ विवाद उत्पन्न हुए और उन्हें मध्यस्थता के लिए भेज दिया गया। उक्त संदर्भ के अनुसरण में 02.04.2009 को मध्यस्थता अधिनिर्णय दिया गया। अधिनिर्णय से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया (मू.वि.या. सं. 89/2009) जिसके अंतर्गत अपीलार्थी ने मध्यस्थता अधिनिर्णय के एक भाग को चुनौती दी। निस्संदेह, उक्त आपत्तियाँ 17 दिनों की देरी से 24.07.2009 को दायर की गईं। इस न्यायालय की रजिस्ट्री ने कुछ आपत्तियाँ उठाईं और अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत उक्त आवेदन उसी दिन

आपत्तियों के अंतर्गत वापस कर दिया गया। अपीलार्थी द्वारा (पुनः दाखिल करने में देरी के लिए माफ़ी के आवेदन में) यह बयान दिया गया है कि अधिनिर्णय ए4 आकार के कागज़ पर था, जिसमें 147 पृष्ठ थे, तथा उसे पुनः टंकित करके विधिक आकार के कागज़ पर दाखिल किया जाना अपेक्षित था। अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन 24.08.2009 को विधिक आकार के कागज़ पर अधिनिर्णय की टंकित प्रति के साथ पुनः दायर किया गया। इस न्यायालय की रजिस्ट्री ने फिर से कुछ आपत्तियाँ उठाईं और उक्त आवेदन को एक बार फिर उसी दिन अर्थात् 24.08.2009 को वापस कर दिया गया।

5. यह बयान दिया गया है कि पूरा मध्यस्थता अभिलेख प्राप्त करने के बाद 23.12.2009 को आवेदन पुनः दाखिल किया गया था। अपीलार्थी द्वारा (पुनः दाखिल करने में देरी के लिए माफ़ी के आवेदन में) यह बयान दिया गया है कि अभिलेख का एक भाग उपलब्ध नहीं कराया गया था और पूरे दस्तावेज़ों के अभाव में, अपीलार्थी के अधिवक्ता 23.12.2009 तक आपत्ति पुनः दाखिल नहीं कर सके। यह भी बयान दिया गया कि संबंधित कार्यकारी अभियंता 30.11.2009 को सेवानिवृत्त हो गए, जिससे भी पुनः दायर करने में देरी हुई। इस न्यायालय की रजिस्ट्री ने पुनः कुछ आपत्तियाँ उठाईं और अपीलार्थी के अनुसार, सभी आपत्तियों को दूर करने के पश्चात्, अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन अंततः 06.01.2010 को पुनः दायर किया गया। इसलिए, अपीलार्थी के अनुसार, आपत्ति पुनः दाखिल करने में 166 दिनों की देरी हुई।

अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत उक्त आवेदन को पुनः दाखिल करने में 166 दिनों के विलंब को माफ़ करने के लिए मू.वि.या. सं. 89/2009 में अं.आ. सं. 1711/2010 के अंतर्गत आवेदन दायर किया था।

6. हालाँकि, प्रत्यर्थी के अनुसार, पुनः दाखिल करने में 166 दिनों से अधिक की देरी हुई है, क्योंकि प्रत्यर्थी के अनुसार, इस न्यायालय की रजिस्ट्री ने फिर से 06.01.2010 पर कुछ दोषों को इंगित किया था जिन्हें अंततः ठीक किया गया और अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन अंतिम बार 05.02.2010 को फिर से दायर किया गया था, न कि 06.01.2010 को जैसा कि अपीलार्थी ने प्राख्यान दिया था। प्रत्यर्थी द्वारा यह प्रतिवाद दिया गया है कि यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन के साथ संलग्न शपथपत्र, रोक आवेदन और विलंब की माफ़ी के लिए आवेदन से पता चलता है कि इन्हें 01.02.2010 को अनुप्रमाणित किया गया था। इसलिए, प्रत्यर्थी के अनुसार, उक्त आवेदन को पुनः दायर करने में 195 दिनों की देरी हुई।

7. विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन दायर करने में 17 दिनों की देरी को माफ़ करने के लिए अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन (मू.वि.या. सं. 89/2009 में अं.आ. सं. 1710/2010) को अनुमति दे दी। हालाँकि, आवेदन को फिर से दाखिल करने में 166 दिनों की देरी को माफ़

करने के लिए आवेदन (मू.वि.या. सं. 89/2009 में अं.आ. सं. 1711/2010) को खारिज कर दिया गया था। परिणामस्वरूप, अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत मू.वि.या. सं. 89/2009 का आवेदन भी खारिज कर दिया गया। आक्षेपित आदेश के प्रासंगिक भाग को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

> "याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति है कि प्रत्यर्थी-ठेकेदार को अधिनिर्णय के अंतर्गत ब्याज दिया गया है और यदि आपत्तियों को अंततः गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिया जाता है, तो पुनः दावा दाखिल करने में हुई देरी की उचित भरपाई की जाएगी। याचिकाकर्ता ने ***इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम उजागर सिंह,*** (2010) 6 एससीसी 786 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देते हुए प्रस्तुत किया कि जब तक यह दुर्भावनापूर्ण इरादे का मामला न हो, जो कि पक्षकार के आचरण से स्पष्ट हो, सामान्य नियम के रूप में, देरी को माफ़ किया जाना चाहिए। इस तरह की तकनीकियों पर इसे खारिज करने के बजाय मामले को गुणागुण के आधार पर लड़ने की अनुमति देने का प्रयास किया जाना चाहिए।
>
> याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैं वर्तमान आवेदन को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हूं, जिसमें याचिका को पुनः दाखिल करने में 166 दिनों के विलंब को माफ़ करने की माँग की गई है। परिसीमा की मूल अवधि जिसके भीतर आपत्तियों को अधिनिर्णय के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है, तीन महीने की है। न्यायालय की देरी को माफ़ करने की शक्ति केवल 30 दिनों तक सीमित है और उसके बाद नहीं। उच्चतम न्यायालय ने ***भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी,*** *एआईआर 2001 एससी*

*4010* में अभिनिर्धारित किया है कि देरी को माफ़ करने की न्यायालय की शक्ति 30 दिनों की अवधि से अधिक नहीं होती है। याचिका को पुनः दाखिल करने में देरी को उपरोक्त परिसीमा अवधि के प्रकाश में देखा जाना चाहिए, जो तीन महीने और तीस दिनों की अवधि से आगे नहीं बढ़ाई जा सकती।

xxxx xxxx xxxx xxxx xxxx

मेरे विचार में, ***इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट*** *(पूर्वोक्त)* में उच्चतम न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होता, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि पुनः दाखिल करने में देरी "बहुत बड़ी" नहीं है, विशेषकर जब परिसीमा की कानूनी अवधि तीन महीने की परिसीमा अवधि से 30 दिनों से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती, और केवल पुनः दाखिल करने में ही 166 दिनों की देरी हुई है। उक्त निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत आने वाले एक मामले पर विचार करते हुए दिया गया। यद्यपि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के अंतर्गत याचिका पर परिसीमा अधिनियम लागू होता है, धारा 34(3) के अंतर्गत प्रदान की गई परिसीमा केवल एक सीमित सीमा तक ही लचीली है, उससे आगे नहीं।

उपरोक्त कारणों से, मुझे इस आवेदन में कोई गुणागुण नहीं मिलता है और इसे खारिज किया जाता है।"

8. आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने वर्तमान अपील को प्रस्तुत किया है। इस न्यायालय ने दिनांक 03.10.2011 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को उक्त आदेश की तिथि से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर न्यायालय में डिक्रीत राशि जमा करने की अनुमति दी थी। अपीलार्थी ने ब्याज के साथ पूरी डिक्रीत राशि जमा कर दी है और इसे एक सावधि जमा में रखा जाता है। अपीलार्थी

द्वारा की गई जमा राशि को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने दिनांक 19.12.2011 के एक आदेश द्वारा मध्यस्थता अधिनिर्णय के निष्पादन पर रोक लगा दी थी।

9. अपीलार्थी की ओर से यह प्रतिवाद दिया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मान कर गलती की है कि याचिका को पुनः दाखिल करने में देरी को अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट परिसीमा अवधि के प्रकाश में देखा जाना चाहिए और इसे तीन महीने और तीस दिनों की अवधि से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। यह प्रतिवाद दिया गया है कि न्यायालय अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन को पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने में असमर्थ नहीं है। न्यायालय पुनः आवेदन में विलंब को माफ़ करने से इंकार कर सकता है, जहाँ यह पाया जाता है कि आवेदक का दृष्टिकोण लापरवाहीपूर्ण या दुर्भावनापूर्ण है तथा कार्यवाही में विलंब करने का आशय रखता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में जहाँ आवेदक देरी के लिए पर्याप्त कारण दिखाने में सक्षम है, न्यायालय देरी को माफ़ करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेंगे। अपीलार्थी के अधिवक्ता ने ***<u>एस.आर. कुलकर्णी बनाम बिरला वीएक्सएल लिमिटेड:</u>*** **1998 (5) एडी (दिल्ली) 634** के मामले में इस न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया है। यह भी प्रतिवाद दिया गया है कि यदि दोष इस प्रकार के हैं कि वादपत्र विधि की दृष्टि में अमान्य है, तो प्रस्तुति की तिथि ही दोषों को दूर करने के बाद

पुनः दाखिल करने की तिथि होगी। तथापि, यदि दोष औपचारिक या सहायक प्रकृति के हैं और वादपत्र की वैधता को प्रभावित नहीं करते हैं, तो प्रस्तुति की तिथि, परिसीमा अवधि की गणना के प्रयोजन के लिए मूल प्रस्तुति की तिथि मानी जाएगी। यह प्रतिवाद दिया गया है कि यही सिद्धांत अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन के लिए भी समान रूप से लागू होगा। चूँकि वर्तमान मामले में, दोष केवल औपचारिक और सहायक प्रकृति के हैं, इसलिए आवेदन को निर्दिष्ट अवधि के भीतर दायर किया गया माना जाना चाहिए और पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ किया जाना चाहिए। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने ***डीएसए इंजीनियर्स (बॉम्बे) बनाम हाउसिंग एंड अर्बन डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड:*** **2003 (1) एडी (दिल्ली) 411** में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

10. प्रत्यर्थी की ओर से यह प्रतिवाद दिया गया है कि यदि पुनः दाखिल करने में देरी अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट तीन महीने और तीस दिनों की अवधि से अधिक है, तो न्यायालयों के पास पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने का कोई अधिकार नहीं है। प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि प्रथम चरण में जो अनुमत नहीं है, अर्थात अधिनियम की धारा 34(3) के अनुसार तीन महीने से अधिक समय के बाद आपत्तियाँ दर्ज कराना, उसे दूसरे चरण में करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। परिणामस्वरूप, यदि पुनः दाखिलीकरण निर्धारित कानूनी अवधि के बाद किया जाता है, तो

न्यायालय के पास उन मामलों में भी विलंब को माफ़ करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा, जहाँ प्रारंभिक दाखिलीकरण समय के भीतर किया गया था। न्यायालयों के पास अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट 30 दिनों की अवधि से अधिक विलंब को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने अपने इस प्रतिविरोध के समर्थन में ***इंडिया ट्रेरिज्म डेव. कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम आर.एस. अवतार सिंह एंड कंपनी:*** **आ.प्र.अ. (मू.प.) सं. 58/2011, दिनांक 10.02.2011 को निर्णीत,** ***दिल्ली ट्रांसको लिमिटेड एंड अन्य बनाम हाइथ्रो इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड:*** **2012 (6) आर.ए.जे. 299 (दिल्ली) और** ***कार्यकारी अभियंता बनाम श्री राम कंस्ट्रक्शन कंपनी:*** **2011 (2) आर.ए.जे. 152 (दिल्ली)** में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित निर्णयों पर भरोसा जताया है कि न्यायालय के पास अधिनिर्णय प्राप्त होने की तिथि से या अधिनियम की धारा 33 के अंतर्गत अनुरोध का निपटान होने की तिथि से 120 दिनों (अर्थात तीन महीने और 30 दिन) की अवधि से परे किसी भी विलंब को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। यह भी प्रतिवाद दिया गया है कि निर्णय की प्रमाणित प्रति दाखिल करने में विफलता को निर्णय की हस्ताक्षरित प्रति दाखिल करने में विफलता के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और यह एक घातक दोष होगा तथा अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत आवेदन दाखिल करना अप्रासंगिक हो जाएगा।

11. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने हमारे समक्ष उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश भी प्रस्तुत किए हैं, जिसमें ***कार्यकारी अभियंता बनाम श्री राम कंस्ट्रक्शन कंपनी*** *(पूर्वोक्त)* में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित दिनांक 12.11.2010 के निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था। यह भी बताया गया कि उक्त निर्णय का अनुपालन इस न्यायालय की एक अन्य खंड पीठ द्वारा ***इंडिया टूरिज़्म डेव. कॉर्पोरेशन लिमिटेड*** *(पूर्वोक्त)* मामले में भी किया गया था तथा ***इंडिया टूरिज़्म डेव. कॉर्पोरेशन लिमिटेड*** *(पूर्वोक्त)* मामले में दिए गए निर्णय के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिकाओं को भी उच्चतम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। वि.अनु.या. सं. 9175-9176/2011 में दिनांक 22.07.2013 को निर्णीत उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय की एक प्रति भी हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है।

12. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने यह भी प्रतिवाद दिया कि दिल्ली उच्च न्यायालय नियम के खंड 5 के अध्याय 1-क (क) के नियम 5 के अनुसार, आपत्तियों को एक बार में 7 दिनों से अधिक समय के भीतर पुनः दायर नहीं किया जाना चाहिए था, और कुल मिलाकर 30 दिन का समय उप रजिस्ट्रार/सहायक रजिस्ट्रार, फ़ाइलिंग काउंटर के प्रभारी द्वारा तय किया जाना चाहिए था। उक्त नियम के नियम 5(3) में यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि याचिका उप-नियम 1 के अंतर्गत फ़ाइलिंग काउंटर के प्रभारी उप रजिस्ट्रार/सहायक

रजिस्ट्रार द्वारा दी गई समयावधि के बाद दायर की जाती है, तो इसे एक नई संस्था के रूप में माना जाएगा। जैसे ही यह एक नई फ़ाइलिंग बन जाती है, तो स्थापित विधि के अंतर्गत, निर्धारित अवधि की समाप्ति से अधिक देरी को किसी भी आधार पर माफ़ नहीं किया जा सकता है। उच्च न्यायालय के नियमों और आदेशों के खंड 5 के अध्याय 1, भाग क के नियम 5 के अंतर्गत याचिका को पुनः दायर करके आपत्तियों को दूर करने के लिए अधिकतम 30 दिनों की अवधि प्रदान की गई है। वर्तमान मामले में ऐसा नहीं किया गया तथा आवेदन 166 दिन की अवधि समाप्त होने के बाद दायर किया गया।

13. हमने पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्तागण को विस्तार से सुना है। वर्तमान अपील में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या न्यायालय को अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन को पुनः दाखिल करने में विलंब को माफ़ करने का अधिकार है, जहाँ विलंब की कुल अवधि अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट सीमा अवधि से अधिक है। और यदि ऐसा है, तो क्या वर्तमान मामले में फिर से दाखिल करने में देरी को माफ़ किया जाना चाहिए।

14. अधिनियम की धारा 34 (3) प्रासंगिक है और नीचे पुनः प्रस्तुत की गई है:-

> "(3) अपास्त करने के लिए कोई आवेदन, उस तिथि से, जिसको आवेदन करने वाले पक्षकार ने माध्यस्थम् अधिनिर्णय प्राप्त किया था, या यदि अनुरोध धारा 33 के अधीन किया गया है तो उस

> तिथि से, जिसको माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अनुरोध का निपटारा किया गया था, तीन माह के अवसान के पश्चात् नहीं किया जाएगा:
>
> परंतु यह कि जहाँ न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आवेदक उक्त तीन माह की अवधि के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारणों से निवारित किया गया था तो वह तीस दिन की अतिरिक्त अवधि में आवेदन ग्रहण कर सकेगा किंतु इसके पश्चात् नहीं।"

15. अधिनियम की धारा 34(3) को पढ़ने मात्र से पता चलता है कि निर्धारित परिसीमा अवधि किसी अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन करने के संबंध में है, न कि ऐसा आवेदन किए जाने के बाद आगे की कार्रवाई के संबंध में। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत किसी आवेदन को पुनः दाखिल करने के संबंध में अधिनियम में कोई समय निर्दिष्ट नहीं किया गया है, जिसे कुछ दोषों को दूर करने के लिए वापस कर दिया गया है। इस प्रकार, हमारे विचार में, जबकि अधिनियम की धारा 34(3) विधायिका के आशय को इंगित करती है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन दायर करने में कोई अनुचित देरी न हो, तथा वह आवेदन को पुनः प्रस्तुत करने के लिए कोई समय सीमा प्रदान नहीं करती है। पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने में न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के संबंध में किसी भी प्रतिबंध को अधिनियम की धारा 34(3) के उपबंध में नहीं पढ़ा जा सकता है।

16. हमारे विचार में, जहाँ तक परिसीमा के उपबंध का संबंध है, आवेदन दाखिल करना और दोषों को दूर करने के बाद उसे पुनः दाखिल करना, पूरी तरह से अलग-अलग बातें हैं। अब यह बात पूरी तरह स्थापित हो चुकी है कि परिसीमा किसी दायित्व को समाप्त नहीं करती, बल्कि किसी पक्षकार को उपलब्ध उपायों का लाभ उठाने के लिए न्यायालय का सहारा लेने से रोकती है। इस प्रकार, यदि कोई पक्षकार निर्दिष्ट समय के भीतर कार्रवाई आरंभ करने के लिए त्वरित कदम उठाने में विफल रहता है, तो न्यायालयों को ऐसे पक्षकार के कहने पर ऐसी कार्रवाई करने से प्रतिबंधित किया जाता है। विधिक उपायों का सहारा लेने के लिए समय सीमा निर्धारित करने के औचित्य को ***भारत बैरल एंड इम मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम ईएसआई कॉरपोरेशन:*** **(1971) 2 एससीसी 860** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार समझाया गया है:-

> "7. ..... परिसीमा अवधि लागू करने की आवश्यकता यह सुनिश्चित करने के लिए है कि कार्यवाही एक विशेष अवधि के भीतर शुरू हो जाए, सबसे पहले, दस्तावेज़ी और मौखिक साक्ष्य की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए ताकि प्रतिवादी को उसके विरुद्ध दावे का विरोध करने में सक्षम बनाया जा सके; दूसरा, इस सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए कि विधि उस व्यक्ति की सहायता नहीं करती है जो निष्क्रिय है और अपने अधिकारों के बारे में सुषुप्त रहता है, जब उसे चुनौती दी जाती है या विवादित होता है तो उसे न्यायालय में दावा किए बिना निष्क्रिय रहने की अनुमति देता है। इस नियम का आधार बनने वाला सिद्धांत इस

कहावत में व्यक्त किया गया है – 'विधि जागरूक की सहायता करती है, न कि सुषुप्त की' (विधि उन लोगों को मदद करती है जो जागरूक रहते हैं, न कि उनकी जो सोते रहते हैं)। इसलिए परिसीमाओं के कानून का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उचित समय के भीतर कार्रवाई के अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए मजबूर करना है, साथ ही पुराने, नकली या धोखाधड़ी वाले दावों को हतोत्साहित करना और उनका दमन करना भी है। ....."

17. पुनः दाखिल करने में देरी के मामले, दाखिल करने में देरी के मामलों से भिन्न होते हैं, क्योंकि ऐसे मामलों में पक्षकार ने पहले ही न्यायालयों में उपलब्ध उपायों का सहारा लेने का आशय व्यक्त कर दिया है और इस संबंध में कदम भी उठा लिए हैं। अतः यह नहीं माना जा सकता कि पक्षकार ने विधिक उपाय प्राप्त करने के अपने अधिकार को त्याग दिया है। हालाँकि, कुछ मामलों में जहाँ किसी पक्षकार द्वारा दायर याचिकाएँ या आवेदन इतने निराशाजनक रूप से अनुचित और अपर्याप्त हैं या उनमें ऐसे दोष हैं जो कार्यवाही के संचालन के लिए मौलिक हैं, तो ऐसे मामलों में पक्षकार द्वारा दायर याचिका को अस्वीकृत और महत्वहीन माना जाएगा। ऐसे मामलों में, पक्षकार को प्रारंभिक फ़ाइलिंग का लाभ नहीं दिया जा सकता है और जिस तिथि को दोषों का निवारण किया जाता है, उसे प्रारंभिक फ़ाइलिंग की तिथि माना जाएगा। दिल्ली उच्च न्यायालय (मूल पक्ष) नियम, 1967 के अध्याय IV के नियम 1 और 2 के संदर्भ में इसी प्रकार का विचार ***अशोक कुमार परमार बनाम डी.सी. सांखला:*** **1995 आरएलआर 85** में व्यक्त किया गया था,

जिसके अंतर्गत इस न्यायालय की एकल पीठ ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था:-

> "दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तैयार नियमों की भाषा को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें वादपत्र में पाए गए दोषों की प्रकृति पर ज़ोर दिया गया है। यदि दोष इस प्रकार के हैं कि विधि की दृष्टि में वादपत्र गैर-वादपत्र हो जाता है, तो प्रस्तुति की तिथि, दोषों को दूर करने के बाद पुनः दाखिल करने की तिथि मानी जाएगी। यदि दोष औपचारिक या सहायक प्रकृति के हैं और वादपत्र की वैधता को प्रभावित नहीं करते हैं, तो वाद दायर करने की परिसीमा की गणना के प्रयोजन के लिए प्रस्तुति की तिथि ही मूल प्रस्तुति की तिथि मानी जाएगी।"

इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने ***<u>डी.सी. सांखला बनाम अशोक कुमार परमार:</u>*** **1995 (1) एडी (दिल्ली) 753** में उपरोक्त दृष्टिकोण को बरकरार रखा और एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध दायर अपील को खारिज करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:-

> "5. ..... वास्तव में, इसमें किसी भी प्रकार का संदेह स्वीकार करना बहुत ही बुनियादी बात है। (मू.प.) नियम, 1967 के नियम 1 और 2, जो ऊपर उद्धृत हैं, दूर से भी यह सुझाव नहीं देते हैं कि दोषों को दूर करने के बाद वादपत्र को पुनः दायर करना, परिसीमा के प्रयोजनों के लिए वादपत्र दायर करने की प्रभावी तिथि होगी। इसलिए, जिस तिथि को वादपत्र प्रस्तुत किया गया है, यहाँ तक कि उसमें दोष भी हैं, वह तिथि परिसीमा अधिनियम के प्रयोजन के लिए भी वही होगी।"

18. कई मामलों में, दोष केवल औपचारिक होंगे और आवेदन के सार को प्रभावित नहीं करेंगे। उदाहरण के लिए, एक आवेदन सभी प्रकार से पूर्ण हो सकता है, तथापि, कुछ दस्तावेज़ स्पष्ट नहीं हो सकते हैं और उन्हें पुनः टंकित करने की आवश्यकता हो सकती है। यह संभव है कि ऐसे मामलों में जहाँ प्रारंभिक फ़ाइलिंग अधिनियम की धारा 34(3) में निर्दिष्ट 120 दिनों (3 महीने और 30 दिन) की निर्दिष्ट अवधि के भीतर हो, तथापि, पुनः फ़ाइलिंग इस अवधि से परे हो सकती है। हमें नहीं लगता कि ऐसी स्थिति में न्यायालय के पास पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने का अधिकार नहीं है। जैसा कि पहले बयान दिया गया है, अधिनियम की धारा 34(3) केवल किसी अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए आवेदन दाखिल करने के संबंध में परिसीमा निर्धारित करती है। यदि आवेदन निर्धारित अवधि के भीतर दायर किया जाता है तो अधिनियम की धारा 34(3) आगे लागू नहीं होगी। यह प्रश्न कि क्या न्यायालय को किसी विशेष परिस्थिति में पुनः आवेदन दाखिल करने में विलंब को माफ़ करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा तथा क्या पर्याप्त कारण दर्शाए गए हैं जो समय के भीतर याचिका/आवेदन को पुनः दाखिल करने से रोकते हैं।

19. ***<u>भारत संघ बनाम पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी</u>:*** **(2001) 8 एससीसी 470** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत किसी अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए निर्धारित समय

सीमा, अधिनियम की धारा 34(3) की स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत न्यायालय द्वारा बढ़ाई नहीं जा सकती है। तथापि, यह निर्णय उन मामलों में लागू नहीं होगा जहाँ अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन निर्धारित विस्तारित समय के भीतर दायर किया गया हो, तथा बताए गए दोषों को दूर करने के बाद आवेदन को पुनः प्रस्तुत करने में देरी हुई हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि ऐसे मामलों में परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 लागू नहीं होगी। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 में कुछ मामलों में परिसीमा अवधि बढ़ाने का प्रावधान है, जहाँ न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि अपीलार्थी/आवेदक के पास निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपील न करने या आवेदन न करने के लिए पर्याप्त कारण थे। ऐसे मामलों में, जहाँ आवेदन/अपील समय पर दायर कर दी जाती है, धारा 5 लागू नहीं होगी। ***भारतीय सांख्यिकी संस्थान बनाम एसोसिएटेड बिल्डर्स:*** **(1978) 1 एससीसी 483** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 की प्रयोज्यता पर विचार किया, जहाँ माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अधीन एक अधिनिर्णय पर आपत्ति समय पर दायर की गई थी, लेकिन इसे पुनः दायर करने में पर्याप्त देरी हुई थी। उस मामले में उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आपत्तियाँ दायर करने में देरी हुई थी, और परिणामस्वरूप, देरी के लिए माफ़ी के आवेदन को अस्वीकार कर

दिया। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील को अनुमति दे दी गई तथा उच्चतम न्यायालय ने इस प्रतिविरोध को अस्वीकार कर दिया कि अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आपत्तियाँ दायर करने में कोई देरी हुई थी। उच्चतम न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे प्रस्तुत है:-

> "9. ..... इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता कि आपत्तियाँ समय पर दायर नहीं की गईं या क्योंकि उन पर उचित ढंग से स्टाम्प नहीं लगाया गया था, इसलिए आपत्तियों को दायर किया गया ही नहीं माना जा सकता। इसलिए, हमारे विचार में, आपत्तियाँ प्रस्तुत करने में कोई विलंब नहीं हुआ है। यदि कोई विलंब हुआ, तो वह दोषों को दूर करने तथा आपत्तियों को पुनः दायर करने के रजिस्ट्रार के निर्देशों का पालन करने में हुआ। जैसा कि हमने पहले बताया है, देरी अपीलार्थी की ओर से किसी प्रकार की लापरवाही के कारण नहीं हुई है, बल्कि ऐसी परिस्थितियों के कारण हुई है जो उसके नियंत्रण से बाहर हैं।
>
> 10. उच्च न्यायालय का यह मानना दोषपूर्ण था कि अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आपत्तियाँ दाखिल करने में कोई देरी हुई थी। आपत्तियाँ दाखिल करने के लिए परिसीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित समय नोटिस की तामील की तिथि से एक माह है। यह सर्वविदित है कि आपत्तियाँ त्रुटिपूर्ण तरीके से, यद्यपि परिसीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर ही दायर की गई थीं। यदि कोई विलंब हुआ तो वह दोषों को दूर करने के बाद आपत्ति याचिका प्रस्तुत करने में हुआ। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में परिसीमा की निर्धारित अवधि को बढ़ाने का प्रावधान है, यदि याचिकाकर्ता न्यायालय को यह संतुष्टि दे दे कि उसके पास उक्त अवधि के भीतर आपत्तियाँ न प्रस्तुत करने के लिए

> पर्याप्त कारण थे। जब आपत्ति याचिका प्रस्तुत करने में कोई विलंब नहीं होता है तो परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती है और अभ्यावेदन में विलंब उन कठोर परीक्षणों के अधीन नहीं होता है जो परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत याचिका में विलंब को क्षमा करने में सामान्यतः लागू होते हैं। आपत्तियाँ प्रस्तुत करने में हुई देरी को माफ़ करने के लिए निचले न्यायालय के समक्ष दायर आवेदन और देरी को माफ़ करने से इनकार करने का न्यायालय का आदेश, ये सभी सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों की गलतफ़हमी के कारण हैं। जैसा कि हमने विवरणी में पहले ही बताया है, रजिस्ट्रार ने यह भी नहीं बताया कि याचिका कितने समय के भीतर प्रस्तुत करनी होगी।"

20. उपर्युक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक बार आवेदन या अपील निर्धारित समय के भीतर दायर कर दी गई है, तो पुनः दायर करने में किसी भी देरी को माफ़ करने के प्रश्न पर न्यायालय को ऐसी देरी के लिए दिए गए स्पष्टीकरण के संदर्भ में विचार करना होगा। किसी विशिष्ट कानून के अभाव में, जो पुनः दाखिल करने में देरी के प्रश्न पर विचार करने में न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर वर्जन लगाता है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय ऐसे आवेदन पर विचार करने में शक्तिहीन हैं, जहाँ पुनः दाखिल करने में देरी आवेदन दाखिल करने के लिए निर्दिष्ट समय सीमा को पार कर जाती है।

21. यद्यपि, न्यायालयों के पास विलंब को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र होगा, लेकिन ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में दृष्टिकोण उदार नहीं हो सकता है और आवेदक के आचरण का परीक्षण इस आधार पर किया जाएगा कि क्या आवेदक ने उचित तत्परता और तेज़ी के साथ कार्य किया है। आवेदक को यह दर्शाना होगा कि विलंब आवेदक के नियंत्रण से बाहर के कारणों से हुआ तथा आवेदक द्वारा सभी संभव प्रयासों के बावजूद इसे टाला नहीं जा सका। अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत परिसीमा की एक अलोचदार अवधि निर्दिष्ट करने के उद्देश्य को भी ध्यान में रखना होगा और न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या कानून के संदर्भ में पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ किया जाए। इस उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने इसके निदेशक/भागीदार के माध्यम से ***मैसर्स कंपीटेंट प्लेसमेंट सर्विसेज बनाम इसके अध्यक्ष के माध्यम से दिल्ली परिवहन निगमः*** **2011 (2) आर.ए.जे. 347 (दिल्ली)** में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

> "9. इन उपबंधों और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत किसी भी याचिका पर तीन महीने की अवधि के बाद विचार नहीं किया जा सकता है, साथ ही पर्याप्त कारण बताने पर 30 दिनों की अतिरिक्त अवधि भी नहीं दी जा सकती है, जिसके बाद कोई भी उपक्रम स्वीकार्य नहीं है। हालाँकि, पुनः दाखिल करने में देरी की माफ़ी की कठोरता धारा 34(3) के अंतर्गत दाखिल करने में देरी की माफ़ी जितनी

सख्त नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी पक्ष को याचिका पुनः दाखिल करने के लिए अनिश्चित और अस्पष्ट अवधि की अनुमति दी जा सकती है।"

22. ***कार्यकारी अभियंता बनाम श्री राम कंस्ट्रक्शन एंड कंपनी*** *(पूर्वोक्त)* में इस न्यायालय की खंड पीठ का निर्णय, जिस पर प्रत्यर्थी ने भरोसा किया है, इस प्रतिविरोध का समर्थन नहीं करता है कि इस न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट तीन महीने और 30 दिनों की अवधि से परे पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा था कि माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम के संदर्भ में, पुनः दाखिल करने में विलंब को माफ़ करने में उदारता दिखाना संसद के आशय के विपरीत होगा। हालाँकि, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि न्यायालय को अधिनियम की धारा 34(3) में निर्दिष्ट अवधि से परे पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। यह उक्त निर्णय के पैरा 41 से भी स्पष्ट है जो निम्नानुसार है:-

"41. प्रश्न, जिसका उत्तर अभी भी दिया जाना आवश्यक है, यह है कि क्या आपत्तियों को पुनः दाखिल करने में 258 दिनों के विलंब के संबंध में कोई उचित स्पष्टीकरण दिया गया है। चूँकि यह विलंब कानूनी सीमा, अर्थात तीन महीने और तीस दिन, को पार कर जाता है, इसलिए हमें यह विचार करना होगा कि विलंब को माफ़ करने के लिए पर्याप्त कारण बताए गए थे या नहीं। पक्षकार के आचरण को परिश्रम की कठोर परीक्षा से गुज़रना होगा, अन्यथा एक निश्चित और अस्थिर परिसीमा अवधि निर्धारित

करने का उद्देश्य निरर्थक हो जाएगा। अपीलार्थी ने देरी का कारण वरिष्ठ स्थायी अधिवक्ता का खराब स्वास्थ्य बताया है। हालाँकि, जैसा कि स्पष्ट रूप से बताया गया है, वकालतनामे में विभाग की स्थायी अधिवक्ता सुश्री सोनिया माथुर के हस्ताक्षर हैं; वास्तव में, इसमें स्वर्गीय श्री आर.डी.जॉली के हस्ताक्षर नहीं हैं। सुनवाई के दौरान दिए गए स्पष्टीकरण के कारण, हम वकालतनामे के तथ्य को नज़रअंदाज़ करेंगे, जिस पर एक अन्य स्थायी अधिवक्ता, सुश्री प्रेम लता बंसल के हस्ताक्षर भी हैं। हमने मू.वि.या. सं. 291/2008 के अभिलेख माँगे हैं और हम पाते हैं कि आपत्तियों पर स्वर्गीय श्री आर.डी.जॉली द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं, बल्कि 9.8.2007 को सुश्री सोनिया माथुर द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं, जिस तिथि को आयकर निदेशक द्वारा शपथ-पत्र पर समर्थन भी दिया गया है इन परिस्थितियों में, स्वर्गीय आर.डी.जॉली की बीमारी स्पष्ट रूप से एक दिखावा है। देरी के लिए कोई अन्य स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम का घोषित उद्देश्य मध्यस्थता कार्यवाही का शीघ्र समापन करना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के अंतर्गत प्रचलित स्थिति में महत्वपूर्ण एवं दूरगामी संशोधन किए गए हैं तथा एक पूर्णतया नया कानून पारित किया गया है। याचिका/आपत्तियों को पुनः दाखिल करने में जानबूझकर या घोर विलंब करके इस उद्देश्य को बाधित नहीं किया जा सकता। अपीलार्थी का आचरण अनुचित नहीं है। हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं और तदनुसार अपील खारिज की जाती है।"

(रेखांकन जोड़ा गया)

23. ***कार्यकारी अभियंता बनाम श्री राम कंस्ट्रक्शन*** *(पूर्वोक्त)* के उपर्युक्त निर्णय पर इस न्यायालय द्वारा ***दिल्ली ट्रांसको लिमिटेड बनाम हाइथ्रो इंजीनियर्स***

***प्राइवेट लिमिटेड*** *(पूर्वोक्त)* में भी विचार किया गया है, जिसमें इसे निम्नानुसार समझाया गया है:-

> 9. हमारे विचार में, *कम्पीटेंट प्लेसमेंट सर्विसेज़* (पूर्वोक्त) में लिया गया निर्णय, *श्री राम कंस्ट्रक्शन कंपनी* (पूर्वोक्त) में खंड पीठ द्वारा की गई टिप्पणी के विपरीत कुछ नहीं कहता है। उसी दिन उसी खंड पीठ द्वारा जो कुछ भी देखा गया, वह यह है कि पुनः दाखिल करने में देरी की माफ़ी की कठोरता धारा 34(3) के अंतर्गत दाखिल करने में देरी की माफ़ी जितनी सख्त नहीं है। साथ ही, खंड पीठ ने यह भी टिप्पणी की कि *"लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी पक्ष को याचिका को फिर से दायर करने के लिए अनिश्चित और अस्पष्ट अवधि की अनुमति दी जा सकती है"।*
>
> 10. *श्री राम कंस्ट्रक्शन कंपनी* (पूर्वोक्त) में न्यायालय ने वास्तव में इस बात का परीक्षण किया थी कि पुनः दाखिल करने में देरी की मात्रा क्या है, जिसे न्यायालय सहन कर सकता है और किसी दिए गए मामले में माफ़ करने की अनुमति दे सकता है। ज़ाहिर है, इस संबंध में कोई कठोर नियम नहीं हो सकता है, और न्यायालय को प्रत्येक मामले की उसके तथ्यों और गुणागुण के आधार पर परीक्षण करना होगा तथा निर्णय लेना होगा कि आपत्ति याचिका को दोबारा दाखिल करने में देरी को माफ़ किया जाए या नहीं, जब याचिका को आरंभिक रूप से दायर करने की समय-सीमा तय हो चुकी हो। हालाँकि, न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि अधिनियम द्वारा परिसीमा अवधि तीन महीने तक सीमित है, जिसे अधिकतम तीस दिन तक बढ़ाया जा सकता है, बशर्ते कि याचिकाकर्ता द्वारा तीन महीने की अवधि से अधिक विलंब के लिए पर्याप्त कारण बताए जाएँ। इसलिए, ऐसा नहीं हो सकता कि याचिकाकर्ता आपत्ति याचिका को पुनः दाखिल

करने में विलंब करके, पुनः दाखिल करने में इतनी देरी कर दे कि वह आपत्ति दाखिल करने की समय-सीमा शुरू होने की तिथि से तीन महीने और तीस दिन की अवधि से भी अधिक हो जाए। यदि पुनः दाखिल करने में देरी इतनी अधिक है कि यह तीन महीने और तीस दिन की अवधि से कहीं अधिक हो जाती है, तो मामले की गहन समीक्षा की आवश्यकता होगी तथा पुनः दाखिल करने में देरी के लिए माफ़ी के आवेदन पर विचार करते समय अधिक कठोर मानदंडों को अपनाने की आवश्यकता होगी, तथा न्यायालय इस मामले में गहन समीक्षा करेगा। अन्य मामलों में विलंब को क्षमा करने के मामले में न्यायालयों द्वारा दिखाई गई उदारता तथा अपनाया गया उदार दृष्टिकोण ऐसे मामलों में नहीं अपनाया जाएगा, क्योंकि न्यायालय द्वारा ऐसा दृष्टिकोण अपनाने से अधिनियम में निहित कानूनी योजना विफल हो जाएगी, जिसमें आपत्तियाँ प्रस्तुत करने के लिए समय की एक बाहरी सीमा निर्धारित की गई है। ऐसा नहीं हो सकता कि याचिकाकर्ता जो कार्य करने का प्रथम दृष्टया हकदार नहीं है, अर्थात् किसी भी परिस्थिति में तीन महीने और तीस दिन की अवधि के बाद किसी निर्णय पर आपत्ति दर्ज कराना, उसे केवल इसलिए करने की अनुमति दी जा सकती है क्योंकि उसने आरंभ में तीन महीने की अवधि के भीतर या तीन महीने और तीस दिन की अवधि के भीतर आपत्ति दर्ज कराई थी, और जहाँ पुनः आपत्ति तीन महीने और तीस दिन की अवधि की समाप्ति के बहुत बाद दर्ज कराई जाती है और वह भी बिना किसी वास्तविक न्यायोचित कारण या वजह के।"

(रेखांकन जोड़ा गया)

24. प्रत्यर्थी ने ***इंडिया टूरिज़्म डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम आर.एस. अवतार सिंह एंड कंपनी*** में विशेष अनुमति याचिका सं. 9175-9176/2011 को

खारिज करने के उच्चतम न्यायालय के 22.07.2013 के आदेश पर भी भरोसा किया है। उपरोक्त विशेष अनुमति याचिकाएँ आ.प्र.अ. सं. 58/2011 और सि.वि. सं. 2252/2011 में दिनांक 10.02.2011 के निर्णय से उत्पन्न हुई हैं, जो बदले में ***कार्यकारी अभियंता बनाम श्री राम कंस्ट्रक्शन एंड कंपनी*** *(पूर्वोक्त)* के निर्णय पर भरोसा करती थीं। चूँकि ***कार्यकारी अभियंता बनाम श्री राम कंस्ट्रक्शन एंड कंपनी*** *(पूर्वोक्त)* के निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था, उक्त विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने आवेदन को अनुमति दी और विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज कर दिया। उक्त आदेश को इस प्रकार भी नहीं पढ़ा जा सकता कि न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन को तीन महीने और तीस दिन की अवधि से अधिक समय तक पुनः दाखिल करने में विलंब को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है, जहाँ प्रारंभिक आवेदन अधिनियम की धारा 34(3) के अंतर्गत निर्दिष्ट समय के भीतर दाखिल किया गया था।

25. इस प्रकार, हमारे विचार में न्यायालय के पास पुनः दाखिल करने में देरी को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र होगा, भले ही अवधि अधिनियम की धारा 34(3) में निर्दिष्ट समय से आगे बढ़ जाए। हालाँकि, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के उद्देश्य को देखते हुए इस अधिकार क्षेत्र का उदारतापूर्वक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मध्यस्थता

कार्यवाही शीघ्रता से संपन्न हो। पुनः दाखिल करने में देरी से अधिनियम के इस उद्देश्य को विफल नहीं होने दिया जा सकता। आवेदक को न्यायालय को यह संतुष्ट करना होगा कि उसने मामले को पूरी लगन से आगे बढ़ाया है और देरी उसके नियंत्रण से बाहर थी और अपरिहार्य थी। वर्तमान मामले में, 166 दिनों की अत्यधिक देरी हुई है और हमारे विचार में अपीलार्थी इसके संबंध में कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे पाया है। अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन को पुनः दाखिल करने में विलंब को माफ़ करने में उदार दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे समय की वह बेलोचदार अवधि निर्दिष्ट करने का उद्देश्य विफल हो जाएगा, जिसके भीतर अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत किसी निर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

26. हमारे विचार में, यद्यपि इस न्यायालय के पास विषयगत आवेदन को फिर से दाखिल करने में देरी को माफ़ करने का अधिकार क्षेत्र है, फिर भी, इस मामले के तथ्यों को देखते हुए अपीलार्थी के पक्ष में इस अधिकार का प्रयोग उचित नहीं है। तदनुसार, वर्तमान अपील का जुर्मानों के संबंध में कोई आदेश दिए बिना निपटान किया जाता है। निर्धारित राशि जिसे सावधि जमा में रखा गया है, प्रत्यर्थी को जारी करने का निर्देश दिया जाता है।

**न्या. विभु बाखरू**

**न्या. बदर दुर्रेज़ अहमद**

**07 नवंबर, 2013**
**आरके**

*(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)*

***अस्वीकरण :*** *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*